भारत में बाल साहित्य : बहु–संस्कृतिवाद और राजनीतिक नजरिए का सवाल

❑ संध्या राव

पश्चिम से भारत में आई बहुत-सी चीजों की तरह बच्चों की किताबों की दुनिया में बहु-संस्कृतिवाद (मल्टीकल्चरलिज्म) और राजनीतिक सही नजरिए की अवधारणाएं आई हैं, हालांकि काफी बाद में। अत: आजकल जब पश्चिम में इस पर काफी होहल्ला मचा है और इसका अंधाधुंध प्रचार हो रहा है, भारत में इन्हें मुद्दों की तरह देखने की शुरूआत भर हुई है। हममें से कुछ लोगों के लिए ये बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल है जिन पर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए पर बहुमत के लिए यह केवल बाद में चिन्तन योग्य बात है। प्रजातियों, भाषाओं एवं बोलियों, संगठित और असंगठित धार्मिक व्यवहारों तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के विविध प्रकारों की संख्या को देखते हुए संभवत: दुनिया में भारत से अधिक कोई बहु-सांस्कृतिक देश नहीं है और वैसे भी एक मजाक प्रचलित है कि एक और एक भारतीय के मिलने पर ग्यारह नजरिए बनते हैं ! इस माहौल में बहु-संस्कृतिवाद और सही राजनीतिक नजरिए पर बहस उन लाइनों पर नहीं चल सकती जिन पर पश्चिम में चली। नियमों के बजाय अपवाद अधिक होने के कारण भी ऐसी लाइनें खींचना लगभग असंभव है।

इससे यह सवाल पैदा होता है कि जब हम बच्चों के लिए किताबें तैयार करते है तो किन बच्चों को संबोधित करें ? शहरों और कस्बों के माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्कूलों में जाने और अंग्रेजी बोलने वाले बच्चे ? एक कमरे, बिना छत और एक शिक्षक वाले स्कूल में जाने वाले ग्रामीण बच्चे जहां शिक्षक आमतौर से कभी नहीं आता ? अभिजात वर्गीय आवासीय स्कूलों में दाखिल बच्चे ? बहुत गरीब बच्चे जो स्कूल इसलिए जाना चाहते हैं और उनके माता-पिता इसलिए उनको भेजना चाहते हैं कि भारत के कुछ राज्यों में चलाई जाने वाली भोजन योजना के चलते दोपहर तक कम से कम एक बार खाना मिल जाएगा ? कौन से बच्चे ?

इस संदर्भ में देखने पर बहु-संस्कृतिवाद की परिभाषा, विविधतापूर्ण लोगों और संस्कृतियों की असली दुनिया की अभिव्यक्ति या कम से कम बच्चों को पुस्तकों में अपने लिए स्थान प्राप्त करने का प्रयास, नए अर्थ ग्रहण कर लेती हैं और सही राजनीतिक नजरिया ? यह और भी मुश्किल है। विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों, क्षेत्रों आदि में भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न चीजों के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। आप विभाजक रेखा कहां खीचेंगे ? या आप इनको कहां पार करेंगे या मिटा देंगे ? आसान तरीका यह मान लेना है कि वे हैं ही नहीं।

अक्सर रूढ़िबद्ध धारणाओं पर आधारित थोड़े से शोधपत्रों को छोड़कर भारत में बच्चों के साहित्य पर बहुत कम अध्ययन हुए हैं। अत: हमारे सामने बच्चों की किताबों पर फैसला करने के कोई तरीके और उनको जांचने के कोई आधार नहीं हैं। किसी न किसी कारण बच्चों की किताबों को आज भी इतना महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता कि उनका आलोचनात्मक परीक्षण या मूल्यांकन किया जाए।

इसी कारण बहु-संस्कृतिवाद और राजनीतिक नजरिए के मॉडलों के लिए हम पहले पश्चिम की ओर देखते हैं, यह समझने के पहले ही कि इनमें से कोई व्यवस्था या मानक ठीक उसी रूप में सामने नहीं आते हैं। भारत विभिन्न संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक चित्र या मोजैक है और इसे पुस्तकों में अभिव्यक्त होना चाहिए। जहां एक नियम एक किताब पर लागू होता है, वह दूसरे पर नहीं हो सकता।

उदाहरण के लिए हेजेल रोशमान अपनी पुस्तक *अगेन्स्ट बार्डर्स प्रमोटिंग बुक्स फार अ मल्टीकल्चरलवर्ड* में वर्जीनिया हेमिल्टन के काम की चर्चा करते हुए कहती हैं कि 'वे अंतर्राष्ट्रीय हॉन्स क्रिश्चियन एंर्डसन पुरस्कार के लिए हेमिल्टन का चुनाव करने वाली संयुक्त राष्ट्र समिति की सदस्य थीं। कुछ लोगों का कहना था कि उनकी कोई संभावना नहीं है क्योंकि, विदेशी उनको नहीं समझेंगे, उनको पढ़ेंगे नहीं, उनका अनुवाद नहीं करेंगे ... उनका कहना है कि स्थानीय लोगों के लिए वे बहुत मुश्किल, बहुत मुहावरेदार हैं। वे गलत थे। वे जीत गईं।' (एएलए बुक्स/बुकलिस्ट पब्लिकेशन्स, शिकागो एवं लंदन: 1933, पेज 25)

'बहुत स्थानीय' 'बहुत मुहावरेदार', 'बहुत कठिन' - ये वे शिकायतें हैं जो हमें पश्चिमी प्रकाशकों और वितरकों से झेलनी पड़ती हैं। भारतीय पुस्तकों के बारे में उनकी प्रतिक्रिया 'सुन्दर चित्र' 'अजनबी कहानी' से लेकर 'हास्यास्पद अंग्रेजी' और यहां तक कि 'सांस्कृतिक रूप में दूरस्थ' आदि होती हैं। हम पूछ सकते हैं - किसके लिए अजनबी और किसके लिए दूरस्थ ? बच्चों के लिए जिनको आश्चर्यजनक भूतकाल से आए और न जाने कहां से आ टपके अपरिचित डाइनासोर वाली कहानियों में साफ तौर से मजा आता है,...

संभवत: वयस्क दिमाग बच्चों की ओर से वयस्क मनोवृत्ति वाले नजरिए से सोचता है, जबकि स्वतंत्र छोड़ दिए जाने पर बच्चे प्राकृतिक रूप से बहु-संस्कृतिवादी यानी परिचित के साथ सरलता से रहने वाले फिर भी अजनबी को भी स्वीकार करने वाले होते हैं।

एक बार हमारी तमिल किताबों को खरीदने की इच्छा रखने वाले श्रीलंका के कुछ वितरक संपर्क में आए पर उनको भाषा के साथ थोड़ी समस्या थी। उन्होंने कहा कि श्रीलंका में प्रयोग होने वाली तमिल थोड़ी अलग है और सुझाव दिया कि उनकी आवश्यकतानुसार हम इसमें परिवर्तन कर दें। आश्चर्यजनक और हमारे लिए सुखद रूप से बाद में उन्होंने अपनी धारणा बदली और कहा कि वे भारतीय तमिल को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि अब वह समय आ गया है जब बच्चों को दूसरे प्रकार की तमिल पढ़ना शुरू कर देना चाहिए। कभी-कभी समानताएं खोजने से कोई चीज मर सकती है और भिन्नताओं को स्वीकार करने से रचना जीवन्त हो उठती है। यहां यही मामला था। शुरूआत में हमारे द्वारा प्रकाशित 'इक्की दुक्की' (चेन्नई, तूलिका पब्लिशर्स, 1996) का उदाहरण लें। यह दो बहनों के बारे में पारंपरिक लोककथा है जिसमें एक के एक तथा दूसरी के दो बाल होते हैं। कथा के अन्त में एक बाल वाली लड़की के बहुत से बाल उग आते हैं और दूसरी के दोनों गिर जाते हैं पर इसके बावजूद वे खुशी से रहती हैं । ब्रिटेन में इस पर यह एतराज किया गया कि गंजे बच्चे को दिखाने से कैंसर की रसायन चिकित्सा कराने वाले बच्चों की भावनाएं आहत होंगी। हमारे लिए यह बात बिल्कुल चौंकाने वाली थी। क्या हमने बिल्कुल गलत किया था ? गहराई से सोचने पर हमें लगा कि शायद-शायद यह उनका नजरिया हो सकता है। भारतीय संदर्भ में सिर मुंडाना विभिन्न रीति-रिवाजों और विश्वासों से जुड़ी सामान्य-सी बात है, यहां तक कि यह विश्वास भी कि ऐसा करने पर और घने बाल उगने की संभावना होती है। इसके साथ ही साथ एक ऐसी महिला भी सामने आई जो लम्बे समय से कैंसर से जूझ रही थी और उसने इस विचार के दुखद होने का मजाक उड़ाया। पर हमें यह समझने में काफी समय लगा कि पश्चिमी अवधारणाओं के साथ चलना जरूरी नहीं और अब समय आ गया है कि पश्चिम भी हमें समझे।

यही बात चित्रों के बारे में है। पश्चिमी प्रकाशकों से हमें इस प्रकार की टिप्पणियां मिलीं 'अच्छी किताब पर चित्र भारतीय नहीं', निश्चित रूप से इसका मतलब 'भारतीय' का उनका नजरिया है। अक्सर ये प्रकाशक अपनी पूर्वाग्रही धारणाओं के हिसाब से चित्र और रंग बदल देते हैं जिस कारण पूरा नजरिया ही बदल जाता है। जहां तक भारतीय चित्रों का सवाल है, उनकी नजर में मुगल या मिनिएचर शैली ही भारतीय है। अफसोस, पर शायद हम बेहतर समझ सकते हैं। फिर कहें तो जो चीज व्यक्ति पहले से जानता है उसे दुहरा देना ही बहु-सांस्कृतिक या राजनीतिक रूप से सही नहीं होता।

भारत में और भारत के बाहर भी जो हमें ध्यान से सुनना चाहें उनके लिए हम पुरजोर तरीके से कहना चाहते हैं कि बच्चे यहां सालों से स्कॉनस (एक प्रकार का केक), चॉकलेट, इक्लेयर्स; मॅरॅन्ग्यूज (अंडे की सफेदी से बनने तथा केक, पेस्ट्री पर लगाने वाला पदार्थ), टंग सैंडविच; पिक्सी (परी), नोम् (एक प्रकार के बौने), ओक् वृक्ष और जिंजर ऍल (एक प्रकार की मदिरा) के बारे में पढ़ रहे हैं। शायद वे तकनीकी रूप से सब चीजों को न समझ सकें पर किताबों का अत्यधिक आनन्द उठा रहे हैं और उनको प्यार कर रहे हैं। वास्तव में हम सब मुख्यत: आयातित ब्रिटिश किताबों की खुराक पर पले-बढ़े हैं। बच्चों के साथ काम करने वाला हर व्यक्ति जानता है कि वयस्कों के लिए अजनबी तथा अजीब लगने वाली चीजों को बच्चे कितने सहज तथा सरल रूप से ग्रहण कर

लेते हैं। कितने खेद की बात है कि, अपने चारों ओर की विविधता के बीच आराम से रहने की बच्चों की संज्ञानात्मक क्षमता को स्वीकार करने की बजाय, वयस्क तय करते हैं कि बच्चों को क्या पढ़ना चाहिए और अपनी संकुचित वर्जनाओं को उनके लिए तैयार की जाने वाली किताबों में थोप देते हैं।

बच्चे अपनी कल्पना का विस्तार करते हैं और उनमें सभी संभावनाओं, पूछे गए सवालों और मांगे गए जवाबों को शामिल करते हैं। अंतर यह है कि वे जिस दुनिया में घूमते हैं उसमें यकीन करते हैं। जब यह मामला है तो हम यह तय करने वाले कौन होते हैं कि वे किस दुनिया में रचें बसें ?

इसाक बाशेव सिंगर ने इन्हीं खतरों की ओर इशारा किया था जब उन्होंने कहा था, 'हमारे समय में साहित्य अपने लक्ष्य खो रहा है' (व्हेन श्लीमेल वेन्ट टू बारसा, फेरेर, 1968, प्रस्तावना)। सभी लोगों को सभी चीजें देने की भागमभाग में हमारे सामने खतरा है कि किसी को कुछ भी न मिल सके । भारत में तैयार किताबों में, भारतीय स्वभाव को सारी पर्तों, मनोदशाओं और पेचीदगियों में अभिव्यक्ति मिलेगी ही। इन किताबों को पढ़ने वाले दूसरे लोगों को उसी तरह इन्हें समझने की कोशिश करनी चाहिए जैसे भारतीय बच्चे संयुक्त राज्य अमेरिका में काले होने की सूक्ष्म अंतर्निहित भावनाओं को समझने की कोशिश करते हैं, या सारायेवो पर बम्बारी के समय लिखी गई नन्हीं ज्लाटा की डायरी को पढ़ने समझने की कोशिश करते हैं। सिंगर याद दिलाते हैं कि अक्सर जगह और पहचान की संवेदनाएं लगभग खोने के कगार पर पहुंचने के कारण हम अपनी अभिव्यक्तियां खो देते हैं।

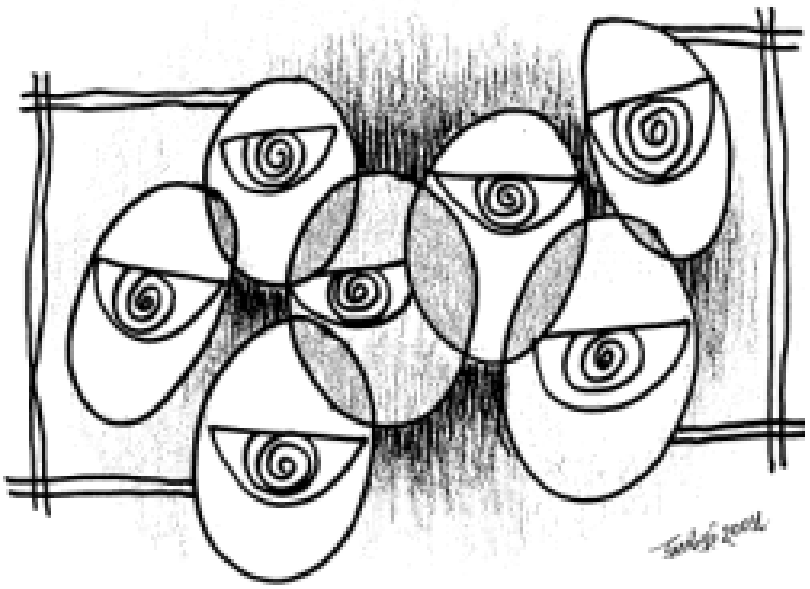

सिंगर इसी तरह महत्त्वपूर्ण एक दूसरी बात कहते हैं। अनजाने शब्द बच्चों को नहीं रोकते, एक उबाऊ कहानी रोकती है' (चिल्ड्रेन्स लिटरेचर, 6, 1977, पेज 13-14)। यही सारी बातों का सार है। यदि आवाज पूरे आग्रह और जज्बे के साथ कही जाए तो लोग सुनेंगे, इससे फर्क नहीं पड़ता कि वे प्रत्येक शब्द या विराम चिह्नों को नहीं समझते । क्या हम अपने द्वारा पढ़ी जाने वाली प्रत्येक पुस्तक की प्रत्येक चीज समझ लेते हैं ? यही बात बच्चों की किताबों पर भी लागू होती है।

यह वह नजरिया है जो भारत में सांस्कृतिक बहुलता और राजनीतिक सोच के संदर्भ में अपनाया जाना चाहिए । कोई बात एक संस्कृति में स्वीकार्य है जबकि दूसरी में पूरी तरह से अस्वीकार्य हो सकती है, पर यह तो होगा ही। हमारे एक लेखक कैथी स्पैग्नो ने एक बार हमें लिखा कि अमेरिकन प्रकाशक मल-मूत्र विसर्जन के वर्णन के बारे में बहुत संवेदनशील होते हैं जबकि जापानी बिल्कुल नहीं। उनके अनुसार ''जापानी बच्चों की किताबों में सालों से ऐसी लोक कथाएं लिखी जाती रही हैं जिनमें टट्टी-पेशाब के संदर्भ होते हैं। कहानी वाचक (स्टोरीटेलर) के तौर पर मैं जापान के दूसरे कहानी वाचकों से सम्मोहित रहा हूं। अक्सर परिष्कृत पुस्तकालयाध्यक्ष या कड़क दिखने वाले व्यापारी पाद आने या पेशाब की नदी बन जाने आदि की कहानियां सुनाते रहते हैं। श्रोता इन्हें पसंद करते हैं। मैंने संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसी चीज कभी नहीं देखी और कई बार जब मैंने ऐसी कहानियां सुनाने की कोशिश की तो स्कूल प्रिंसिपलों की फटकार झेलनी पड़ी।'' बात को आगे बढ़ाते हुए कवि, अनुवादक, लोक वार्ताकार तथा विद्वान ए. के. रामानुजम विश्वासपूर्वक कहते हैं कि ऐसी कहानियां वास्तव में परंपरागत रूप से बच्चों को सही तरीके से मल-मूत्र त्याग सिखाने का हिस्सा रही हैं। ये काम के दौरान शिक्षा देती रही हैं जैसे भारतीय लोक कथाएं जो सूर्यास्त के बाद बच्चों को दादी- नानी तथा नौकरों द्वारा प्रेम और परेशानियों के बारे में बताती रही हैं।' (राधिका मेनन का फरवरी 2000 में दिल्ली पुस्तक मेले में प्रस्तुत शोध पत्र-'क्या बच्चों के साहित्य में वर्जनाएं होती हैं ?) इन कहानियों में वे मुद्दे उठाए जाते हैं जो शायद आजकल प्रचलित 'सही' मानकों पर खरे न उतरें, फिर भी ये मुद्दे बड़े संयुक्त परिवारों में रहने वाले बच्चों के सामने सामान्यत: आते

रहते हैं। कहानियां उन चीजों को कहने का रास्ता दिखाती हैं जिनके बारे में सामान्यत: बोला नहीं जा सकता है, और ये कहानियां बच्चों को अपने आसपास की दुनिया की पेचीदगियों से निबटने में सहायता करने वाले औजार हैं।

अत: 'सही नजरिया' वर्जनाओं को थोपने से नहीं बल्कि बातों को ठीक ढंग से प्रस्तुत करने से बनता है।

किताबों में लोगों, समय और चीजों की उसी तरह अभिव्यक्ति होनी चाहिए जिस तरह वे हैं। अच्छी किताबें इनको आसानी से लिख देती हैं। और इनको हल्का-सा रंग दे देती हैं। बच्चों की एक प्यारी कहानी 'क्लियर स्काई' (वन वर्ड, चेन्नई, तूलिका पब्लिशर्स, 1988, पेज 9-16 तमिल से अनूदित कहानी) में नारीवादी लेखिका अम्बे ने वर्तमान लैंगिक तथा जातीय असमानताओं पर सवाल उठाए हैं। विश्वविद्यालय के सेमिनार में यह कहानी पढ़ने पर एक बार बच्चों की किताबों में जाति जैसे मुद्दे शामिल करने पर गर्मागर्म चर्चा हुई । एक तर्क यह था, ''ये बुरी चीजें हैं जब इनके बारे में बात होती है तो ये बच्चों के दिमाग में मजबूत हो जाती हैं, जो हो सकता है इनके बारे में बिल्कुल न जानते हों ।'' इसके जवाब में कमरे में मौजूद दूसरे लोगों का जवाब था कि जातीय भेदभाव का लोगों को नुकसान उठाना पड़ता है और बच्चों को निश्चित रूप से जानना चाहिए कि आज भी ऐसा हो रहा है। अब यदि ब्रिटेन और अमेरिका के बच्चे इन चीजों को नहीं समझते तो हम इसे समझने में उनकी मदद कर सकते हैं, जैसे नस्ली तनावों और यहूदी विरोधी भावनाओं को इनका अनुभव न करने वाली दूसरी संस्कृतियों के लोग समझ लेते हैं।

इन मुद्दों को उठाने के नतीजे में एक सवाल यह पैदा होता है कि एक खास संस्कृति के बारे में लिखने के योग्य कौन है - केवल उस संस्कृति के भीतर का व्यक्ति या कोई भी संवेदनशील तथा समझदारी वाला व्यक्ति ? बाद वाले मामले में अनेक समस्याएं हैं और सामान्यत: केवल बाहरी होने के कारण वह आलोचनाओं का अधिक शिकार हो सकता है पर इस कारण एक लेखक को सीमित कर देना गलत होगा क्योंकि अच्छा लेखक इन सभी सीमाओं को आसानी से पार कर सकता है। तथ्यों की आधिकारिकता तथा लय को पता करने और यह देखने कि क्या कहानी सही लग रही है, की जिम्मेदारी प्रकाशकों पर है। उनकी यह भी सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी है कि बहु-सांस्कृतिक होने का दावा करने वाली पुस्तकें सचमुच वैसी हों; न कि केवल एक पेज पर यूरोपीय, अफ्रीकन तथा एशियाई चेहरों को एक साथ रख भर दिया जाए। पर प्रकाशन भी वैश्विक बाजार की शक्तियों तथा उस समय के प्रधान विचारों से निर्देशित एक व्यापार है। शक्ति भव्य होती है और दूसरी चीजों की तुलना में इसमें आकर्षित तथा प्रभावित करने की अधिक क्षमता होती है, चाहे यह बच्चों की किताबों का मामला ही क्यों न हो।

इस असंतुलन को ठीक किया जाना है। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बहु-संस्कृतिवाद सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का दूसरा चेहरा न बन जाए। केवल तभी सच्ची सांस्कृतिक बहुलता पनप सकती है जब किताबें और विचार स्वतंत्रतापूर्वक एक देश से दूसरे देश में आ जा सकें। इस तथ्य का स्वीकार सही राजनीतिक चेतना को उस संकीर्णता से स्वाभाविकत: मुक्ति दिलाएगा जिसे आज वह धारण किए हुए है। अच्छी खबर यह है कि ऐसा वाकई हो रहा है, भले ही छोटे पैमाने पर। हमारे द्वारा प्रकाशित भारतीय लोक कथाओं का एक पुनरावलोकन जिसे किसी भी तरह गैर-भारतीय पाठकों के लिए परिवर्तित नहीं किया गया है, के बारे में उतरी अमेरिका के स्कूल पुस्तकालय जर्नल (एंगेल. जे. अर्नोल्ड्स, नवम्बर 1998) में कहा गया है, ''इसका परिणाम एक सांस्कृतिक पाठ है जो आनन्दित करता है तथा जानकारी देता है...कहानियों में एक परिचित ध्वनि है पर खास भारतीय लय के साथ जो श्रोताओं को दूर देश ले जाती है।'' और फिर वही कहानी जिसे एक बार कुछ लोगों द्वारा 'सांस्कृतिक रूप से दूरस्थ कह कर अस्वीकार कर दिया गया था, उसने यह प्रतिक्रिया हासिल की है, ''यह मध्य भारत के एक राज्य मध्य प्रदेश में रहने वाली भिलाला आदिवासियों की मजेदार और मजाकिया कहानी है। आदिम काल से चले आ रहे ज्ञान को रेखांकित करने वाली इस जीवन्त कहानी के साथ चटक प्राथमिक तथा द्वितीयक रंगों और रंगीन पृष्ठभूमि वाले चित्र दिए गए हैं। वास्तव में प्रसन्नता की बात है कि जादुई आकर्षण वाली यह कहानी उस क्षेत्र से है जिसे हमेशा लोक कथा संग्रहों में स्थान नहीं मिला।'' (डायेन एस. मार्टन, स्कूल लाइब्रेरी जर्नल, जुलाई 1999)

स्पष्ट है कि बहु-आयामी समझदारी जरूरी है और यह संभव भी है। जहां वयस्कों को सचेतन ढंग से काम करना होता है वहीं बच्चों के साथ फायदा यह है कि वे सहज रूप से खुले होते हैं और चीजों को समझ लेते हैं। हाल ही में बच्चों के लेखन पर एक कार्यशाला का संचालन करते हुए तूलिका की एक लेखिका सुनीति नाम जोशी ने इस विस्तृत विचार को खूबसूरती से 'गागर में सागर' की तरह प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, 'साइबरस्पेस वास्तव में साझा सांस्कृतिक स्पेस' है, इस स्पेस का साझा कम्प्यूटरों के बजाए मानव मस्तिष्कों से होता है।'' अब जबकि इंटरनेट कहानी सुनाने के साथ माध्यम के रूप में उभर रहा है, सांस्कृतिक लचीलापन और समझदारी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है। बच्चों को पूर्व निर्धारित खांचों में फिट कर देना उनको अपंग बनाना होगा। हमें उनके मस्तिष्क को स्वतंत्र कर देना चाहिए। ◆

अनुवाद : के. बी. सिंह